गबन

मुंशी प्रेमचंद

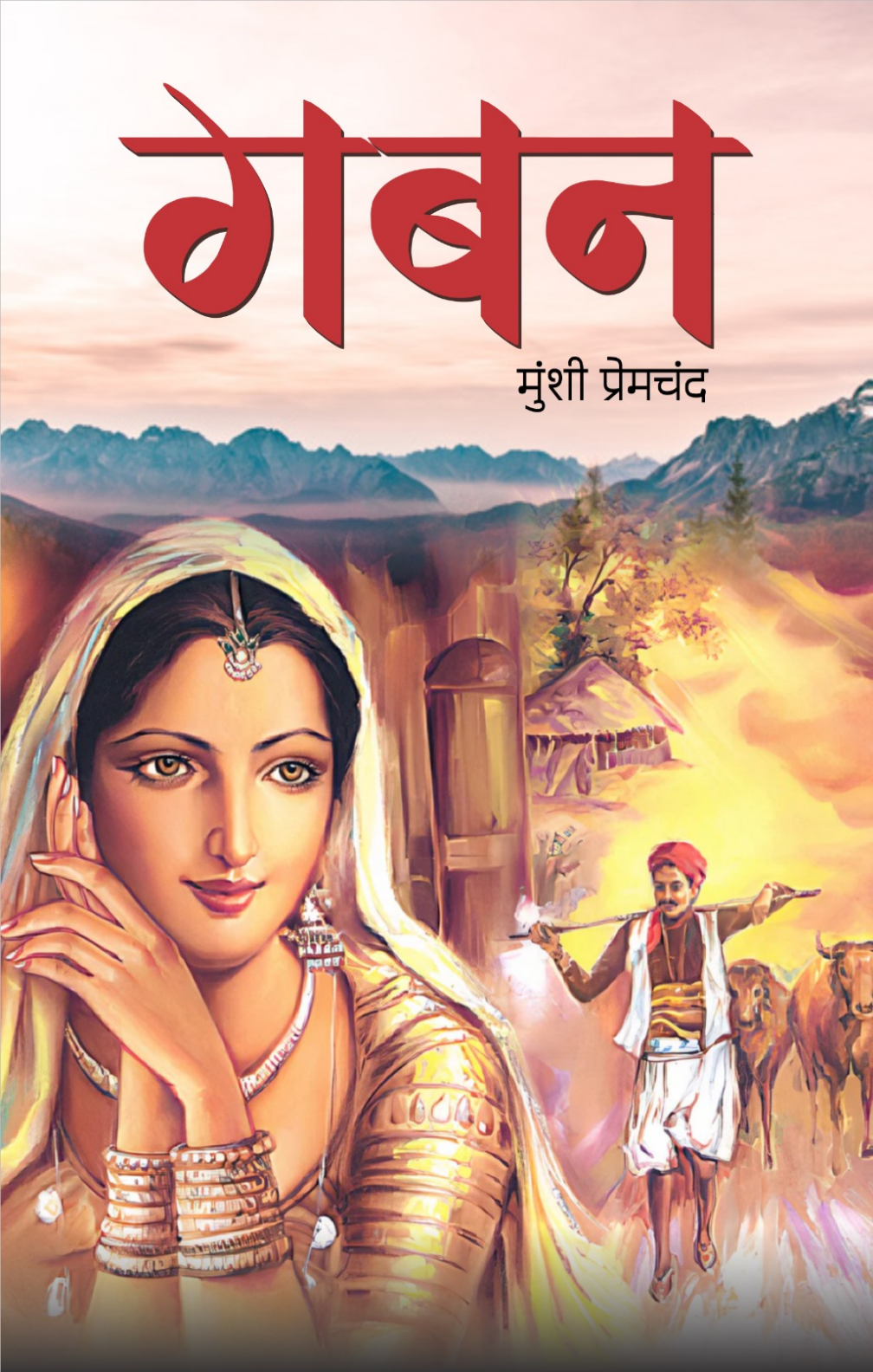

गबन

प्रेमचंद

1

बरसात के दिन है, सावन का महीना। आकाश में सुनहरी घटाएँ छाई हुई है। रह-रहकर रिमझिम वर्षा होने लगती है। अभी तीसरा पहर है; पर ऐसा मालूम हो रहा है, शाम हो गई। आमों के बाग में झूला पड़ा है। लड़कियाँ झूल रही है और उनकी माताएँ भी। दो-चार झूल रही है, दो-चार झूला रही है। कोई कजली गाने लगती है, कोई बारहमासा। इस ऋतु में महिलाओं की बाल-स्मृतियाँ भी जाग उठती है। ये फुहारें मानों चिंताओं को हृदय से धो डालती है। मानों मुरझाए हुए मन को भी हरा कर देती है। सबके दिल उमंगों से भरे हुए है। धानी साड़ियों ने प्रकृति की हरियाली से नाता जोड़ा है।

इसी समय एक बिसाती आकर झूले के पास खड़ा हो गया। उसे देखते ही झूला बन्द हो गया। छोटी-बड़ी सबों ने आकर उसे घेर लिया। बिसाती ने अपना सन्दूक खोला और चमकती-दमकती चीजें निकालकर दिखाने लगा। कच्चे मोतियों के गहने थे, कच्चे लैस और गोटे, रंगीन मोजें, खूबसूरत गुड़ियाँ और गुड़ियों के गहने, बच्चों के लट्टू और झुनझुने। किसी ने कोई चीज ली, किसी ने कोई चीज। एक बड़ी-बड़ी आँखों वाली बालिका ने वह चीज पसन्द की, जो उन चमकती हुई चीजों में सबसे सुन्दर थी। वह फिरोज़ी रंग का एक चन्द्रहार था।

माँ से बोली - अम्माँ, मैं यह हार लूँगी।

माँ ने बिसाती से पूछा - बाबा, यह हार कितने का है?

बिसाती ने हार को रुमाल से पोंछते हुए कहा - खरीद तो बीस आने की है, मालकिन जो चाहे दे दें।

माता ने कहा - यह तो बड़ा महँगा है। चार दिन में इसकी

चमक-दमक जाती रहेगी।

बिसाती ने मार्मिक भाव से सिर हिलाकर कहा - बहूजी, चार दिन में तो बिटिया को असली चन्द्रहार मिल जाएगा। माता के हृदय पर इन सहृदयता से भरे शब्दों ने चोट की। हार ले लिया गया।

बालिका के आनन्द की सीमा न थी। शायद हीरों के हार से भी उसे इतना आनन्द न होता। उसे पहनकर वह सारे गाँव में नाचती फिरी। उसके पास जो बाल-सम्पत्ति थी, उसमें सबसे मूल्यवान, सबसे प्रिय यही बिल्लौर का हार था।

लड़की का नाम जालपा था, माता का मानकी।

2

महाशय दीनदयाल प्रयाग के एक छोटे-से गाँव में रहते थे। वह किसान न थे; पर खेती करते थे। वह जमींदार न थे; पर ज़मींदारी करते थे। थानेदार न थे; पर थानेदारी करते थे। वह थे जमींदार के मुख्तार। गाँव भर में उन्हीं की धाक थी। उनके पास चार चपरासी थे, एक घोड़ा, कई गाएँ-भैंसें। वेतन कुछ पाँच रुपए पाते थे, जो उनके तंबाकू के खर्च को भी काफी न होता था। उनकी आय के और कौन-से मार्ग थे, यह कौन जानता है। जालपा इन्हीं की लड़की थी। उनकी तीन भाई और थे; पर इस समय वह अकेली थी।

उससे कोई पूछता - तेरे भाई क्या हुए, तो वह बड़ी सरलता से कहती - बड़ी दूर खेलने गए है।

कहते है, मुख्तार साहब ने एक ग़रीब आदमी को इतना पिटवाया था कि वह मर गया था। उसके तीन वर्ष के अन्दर तीनों लड़के जाते रहे। तब से बेचारे बहुत संभलकर चलते थे। फूँक-फूँककर पाँव रखते; दूध के जले थे, छाछ भी फूँक-फूँककर पीते थे। माता और पिता के जीवन में और क्या अवलम्ब!

दीनदयाल जब कभी प्रयाग जाते, जो जालपा के लिए कोई-न-कोई आभूषण ज़रूर लाते। उनकी व्यवहारिक बुद्धि में यह विचार ही न आता था कि जालपा किसी और चीज से अधिक प्रसन्न हो सकती है। गुड़िया और खिलौने वह व्यर्थ समझते थे; इसलिए जालपा आभूषणों से ही खेलती थी। यही उसके खिलौने थे। वह बिल्लौर का हार, जो उसने बिसाती से लिया था, अब उसका सबसे प्यारा खिलौना था। असली हार की अभिलाषा अभी उसके मन में उदय नहीं हुई थी। गाँव में कोई उत्सव होता, या कोई त्योहार पड़ता, तो वह उसी हार को पहनती। कोई दूसरा गहना उसकी आँखों में जँचता ही न था।

एक बार जब दीनदयाल लौटे तो मानकी के लिए चन्द्रहार लाये। मानकी की यह साध बहुत दिनों से थी। यह हार पाकर वह मुग्ध हो गई।

जालपा को अब अपना हार अच्छा न लगता, पिता से बोली - बाबूजी, मुझे भी ऐसा ही हार ला दीजिए।

दीनदयाल ने मुस्कराकर कहा - ला दूँगा, बेटी।

'कब ला दीजिएगा?'

'बहुत जल्द । '

बाप के शब्दों से जालपा का मन न भरा। उसने माता से जाकर कहा - अम्माँजी, मुझे भी अपना-सा हार बनवा दो।

माँ - वह तो बहुत रुपयों में बनेगा बेटी।

जालपा - तुमने अपने लिए बनवाया है, मेरे लिए क्यों नहीं बनवाती?

माँ ने मुस्कराकर कहा - तेरे लिए तेरी ससुराल से आएगा। यह हार छः सौ में बना था। इतने रुपए जमा कर लेना, दीनदयाल के लिए आसान न था। ऐसे कौन बड़े ओहदेदार थे। बरसों में कहीं यह हार बनने की नौबत आई थी। जीवन में फिर कभी इतने रुपए आएँगे, इसमें उन्हें सन्देह था।

जालपा लजाकर भाग गई; पर यह शब्द उसके हृदय में अंकित हो गए। ससुराल उसके लिए अब उतनी भयंकर न थी। ससुराल से चन्द्रहार आएगा, वहाँ के लोग उसे माता-पिता से अधिक प्यार करेंगे। तभी तो जो चीज ये लोग नहीं बनवा सकते, वह वहाँ से आएगी।

लेकिन ससुराल से न आए तो! - उसके सामने तीन लड़कियों के विवाह हो चुके थे, किसी की ससुराल से चन्द्रहार न आया था।

कहीं उसकी ससुराल से भी न आया तो? उसने सोचा – क्या माताजी अपना हार मुझे दे देंगी? अवश्य दे देंगी।

इस तरह हँसते-खेलते सात वर्ष कट गए। और वह दिन भी आ गया, जब उसकी चिर-संचित अभिलाषा पूरी होगी।

3

मुंशी दीनदयाल की जान-पहचान के आदमियों में एक महाशय दयानाथ थे, बड़े ही सज्जन और सहृदय। कचहरी में नौकर थे और पचास रुपए वेतन पाते थे। दीनदयाल अदालत के कीड़े थे। दयानाथ को उनसे सैकड़ों बार काम पड़ चुका था। चाहते तो हजारों वसूल करते; पर कभी एक पैसे के भी रवादार न हुए थे। कुछ दीनदयाल के साथ ही उनका यह सलूक न था – यह उनका स्वभाव था। यह बात भी न थी कि वह बहुत ऊँचे आदर्श के आदमी हों; पर रिश्वत को हराम समझते थे। शायद इसलिए कि वह अपनी आँखों से इसके कुफल देख चुके थे। किसी को जेल जाते देखा था, किसी को सन्तान से हाथ धोते, किसी को कुव्यसनों के पंजे में फँसते। ऐसी उन्हें कोई मिसाल न मिलती थी, जिसने रिश्वत लेकर चैन किया हो। उनकी यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि हराम की कमाई हराम ही में जाती है। यह बात वह कभी न भूलते।

इस जमाने में पचास रुपये की भुगत ही क्या। पाँच आदमियों का पालन बड़ी मुश्किल से होता था। लड़के कपड़ों को तरसते, स्त्री गहनों को तरसती; पर दयानाथ विचलित न होते थे। बड़ा लड़का दो ही महीनों तक कॉलेज में रहने के बाद पढ़ना छोड़ बैठा। पिता ने साफ कह दिया - मैं तुम्हारी डिगरी के लिए सबको भूखा और नंगा नहीं रख सकता। पढ़ना चाहते हो तो, अपने पुरुषार्थ से पढ़ो। बहुतों ने किया है, तुम भी कर सकते हो; लेकिन रमानाथ में इतनी लगन न थी। इधर दो साल से वह बिलकुल बेकार था। शतरंज खेलता, सैर-सपाटे करता और माँ और छोटे भाइयों पर रोब जमाता। दोस्तों की बदौलत शौक़ पूरा होता रहता था। किसी का चेस्टर माँग लिया और शाम को हवा खाने निकल गए। किसी का पंप-शू पहन लिया, किसी की घड़ी कलाई पर बाँध ली। कभी बनारसी फैशन में निकले, कभी लखनवी फैशन में। दस मित्रों ने एक-एक कपड़ा बनवा लिया, तो दस सूट बदलने का साधन हो गया। सहकारिता का यह बिलकुल नया उपयोग था। इसी युवक को दीनदयाल ने जालपा के लिए पसन्द किया। दयानाथ शादी नहीं करना चाहते थे। उनके पास न रुपए थे और न एक नए परिवार का भार उठाने की हिम्मत; पर जागेश्वरी ने त्रिया-हठ से काम लिया और इस शक्ति के सामने पुरुष को झुकना पड़ा। जागेश्वरी बरसों से पुत्र-वधू के लिए तड़प रही थी। जो उसके सामने बहुएँ बनकर आई, वे आज पोते खिला रही है, फिर उस दुखिया को कैसे धैर्य होता। वह कुछ-कुछ निराश हो चली थी। ईश्वर से मनाती थी कि कहीं से बात आए। दीनदयाल ने संदेश भेजा, तो उसको आँखें-सी मिल गई। अगर कहीं यह शिकार हाथ से निकल गया, तो फिर न जाने कितने दिनों और राह देखनी पड़े। कोई यहाँ क्यों आने लगा। न धन ही है, न जायदाद। लड़कों पर कौन रीझता है, लोग तो धन देखते है; इसलिए उसने इस अवसर पर सारी शक्ति लगा दी और उसकी विजय हुई।

दयानाथ ने कहा - भाई, तुम जानो तुम्हारा काम जाने। मुझमें समाई नहीं है। जो आदमी अपने पेट की फ़िक्र नहीं कर सकता, उसका विवाह करना मुझे तो अधर्म-सा मालूम होता है। फिर रुपए की भी तो फ़िक्र है। एक हज़ार तो टीमटाम के लिए चाहिए, जोड़े और गहनों के लिए अलग। (कानों पर हाथ रखकर) ना बाबा! यह बोझ मेरे मान का नहीं।

जागेश्वरी पर इन दलीलों का कोई असर न हुआ। बोली – वह भी तो कुछ देगा।

'मैं उससे माँगने तो जाऊँगा नहीं।'

'तुम्हारे माँगने की ज़रूरत ही न पड़ेगी। वह खुद ही देंगे। लड़की के ब्याह में पैसे का मुँह कोई नहीं देता। हाँ, मक़दूर चाहिए, सो दीनदयाल पोढ़े आदमी है। और फिर यही एक सन्तान है; बचाकर रखेंगे तो किसके लिए। '

दयानाथ को अब कोई बात न सूझी, केवल यही कहा – वह चाहे लाख दे दें। चाहे एक न दें। मैं न कहूँगा कि दो, ना कहूँगा कि मत दो। कर्ज़ मैं लेना नहीं चाहता। और लूँ तो तो दूँगा किसके घर से।

जागेश्वरी ने इस बाधा को मानो हवा में उड़ाकर कहा – मुझे तो विश्वास है कि टीके में एक हज़ार से कम न देंगे। तुम्हारे टीमटाम के लिए इतने बहुत है। गहनों का प्रबन्ध किसी सर्राफ से कर लेना। टीके में एक हजार देंगे, तो क्या द्वार पर एक हज़ार भी न देंगे। वही रुपए सर्राफ को दे देना। दो-चार सौ बाकी रहे, वह धीरे-धीरे चुक जाएँगे। बच्चा के लिए कोई-न-कोई द्वार खुलेगा ही।

दयानाथ ने उपेक्षा-भाव से कहा - खुल चुका, जिसे शतरंज और सैर-सपाटे से फुरसत न मिले, उसे सभी द्वार बन्द मिलेंगे।

जागेश्वरी को अपने विवाह की बात याद आई। दयानाथ भी तो गुलछर्रे उड़ाते थे; लेकिन उसके आते ही उन्हें चार पैसे कमाने की फ़िक्र कैसी सिर पर सवार हो गई थी। साल भर भी न बीतने पाया था कि नौकर हो गए। बोली - बहू आ जाएगी, तो उसकी आँखें भी खुलेंगी, देख लेना। अपनी बात याद करो। जब तक गले में जुआ नहीं पड़ा है, तभी तक यह कुलेलें है। जुआ पड़ा और सारा नशा हिरन हुआ। निकम्मों को राह पर लाने का इससे बढ़कर और कोई उपाय ही नहीं।

जब दयानाथ परास्त हो जाते थे, तो अखबार पढ़ने लगते थे। अपनी हार को छिपाने का उनके पास यहीं साधन था।

4

मुंशी दीनदयाल उन आदमियों में से थे, जो सीधों के साथ सीधे होते है, पर टेढ़ों के साथ टेढ़े ही नहीं शैतान हो जाते है। दयानाथ बड़ा-सा मुँह खोलते, हजारों की बातचीत करते, तो दीनदयाल उन्हें ऐसा चकमा देते कि वह उम्र भर याद करते। दयानाथ की सज्जनता ने उन्हें वशीभूत कर दिया। उनका विचार एक हज़ार देने का था; पर एक हज़ार टीके में ही दे आए।

मानकी ने कहा - जब टीके में एक हज़ार दिया, तो इतना ही घर भी देना पड़ेगा। आएगा कहाँ से?